INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD)
© 2026 IJNRD | Volume 11, Issue 1, January 2026 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

जगह बनाता समानांतर हिंदी सिनेमा: विगत दो दशकों के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० जया

प्रोफेसर: हिन्दी-विभाग

एम०एल०एंडजे०एन०के०गर्ल्स कॉलेज,सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

drjayapkt@gmail.com

समाज और साहित्य, एक-दूसरे से प्रेरित व प्रभावित होते हैं, वर्तमान दौर में इसमें सिनेमा भी जुड़ गया है। सिनेमा, हमारे समाज में विशेष स्थान रखता है और "भारतीय समाज दुनिया के सबसे जटिल समाजों में एक है। इसमें कई धर्म, जाति, भाषा, नस्ल के लोग बिलकुल अलग-अलग तरह के भौगोलिक भू-भाग में रहते हैं। उनकी संस्कृतियाँ अलग हैं, लोक-व्यवहार अलग हैं।" इस वातावरण में फिल्म बनाना चुनौतीपूर्ण काम हो जाता है, ऐसी फिल्म जो लोगों की विचारधारा और भावनाओं का ईमानदारी से प्रतिनिधित्व करती हो। हिन्दी सिनेमा के दो रूप हैं- व्यवसायिक सिनेमा और समानांतर सिनेमा। "समानांतर सिनेमा भारतीय सिनेमा में एक फिल्म-आंदोलन था, जो 1950 के दशक में पश्चिम बंगाल राज्य में मुख्यधारा के वाणिज्यिक भारतीय सिनेमा के विकल्प के रूप में उत्पन्न हुआ तथा जिसका प्रतिनिधित्व विशेष रूप से लोकप्रिय हिंदी सिनेमा ने किया, जिसे आज बॉलीवुड के रूप में जाना जाता है।" बीसवीं सदी के इस दौर में अनेक बेहतरीन फिल्में हिंदी सिनेमा के दर्शकों को देखने को मिलीं, जिनमें नीचा नगर, अर्थ, मण्डी, अर्धसत्य, आक्रोश, अंकुर, मिर्च मसाला, मंथन, स्पर्श, निशान्त आदि फिल्मों का नाम लिया जा सकता है।

एक ओर जहाँ व्यवसायिक सिनेमा, विशुद्ध मनोरंजन परोसता है वहीं दूसरी ओर कला या समानांतर सिनेमा दर्शकों को चिंतन के लिए विचार-भूमि उपलब्ध कराता है। समय और समाज में परिवर्तन के मद्देनज़र समानांतर सिनेमा के कथ्य में भी बदलाव देखने को मिलता रहा है "...सभ्यता, संस्कृति, भाषा और इतिहास को सिनेमा जगत में बड़ी खूबसूरती से दर्शाया गया। रिश्तों की खूबसूरती तो कभी उलझे हुए रिश्ते भी फिल्मों में देखने को मिलते हैं; जो कहीं न कहीं हमारी निज़ी ज़िन्दगी पर आधारित होते हैं, जिनकी कहानी हमें हमारी ज़िंदगी से जुड़ी लगती है। बदलते हुए समाज का रूप-रंग और स्वरूप हमें भारतीय सिनेमा में बखूबी देखने को मिलता है।" बीते दो दशकों (वर्ष 2000-2020 तक) में हिंदी सिनेमा के दर्शकों को कई उम्दा समानांतर फिल्में देखने को मिलीं। ये फिल्में बने-बनाये फिल्मी फार्मूलों के ढर्रे से मुक्त हैं; इनमें घिसी-पिटी कहानियाँ, पेड़ों के चक्कर लगाते नायक-नायिका, चार-पाँच नृत्य-गीत व जबरन ठूँसे गए मार-धाड़ के दृश्य नहीं होते। अच्छी पटकथा, बेहतरीन निर्देशन और प्रशंसनीय अभिनय-कौशल से सँवरी होने के बावजूद भी पहले ये फिल्में; पिक्चर-हॉल, मल्टीप्लेक्स में अधिक भीड़ नहीं जुटा पाती थीं क्योंकि कई बार व्यस्तता या किसी अन्य कारण से बाहर फिल्म देखना संभव नहीं हो पाता लेकिन अब इन फिल्मों का दर्शक-वर्ग बढ़ा है इसके लिए साधुवाद है तकनीकी उन्नयन को, जिसके कारण आज हम घर बैठे इनका आनन्द उठा रहे हैं। "इंटरनेट के कारण सिनेमा ज्यादा लोगों तक पहुँचा। इंटरनेट के कारण दर्शक दुनिया भर की फिल्मों से रूबरू हुए। उनके समझदार होते ही भारतीय फिल्में भी समझदार हो गयीं।" अब दर्शक मनचाही फिल्में देखता है, जो उसे दिखाया जाए वो देखने के लिए वह बाध्य नहीं है।

विगत बीस वर्षों में कई अच्छी समानांतर फिल्में देखने को मिलीं परन्तु अध्ययन की सीमा व सुविधा को ध्यान में रखते हुए मैंने पंद्रह फिल्मों का चयन किया है। विभिन्न विषयों पर बनीं ये फिल्में बड़ी ईमानदारी, साफ़गोई और आसान लेकिन दृढ़ तरीके से अपनी बात रखती हैं।

इक़बाल (2005)

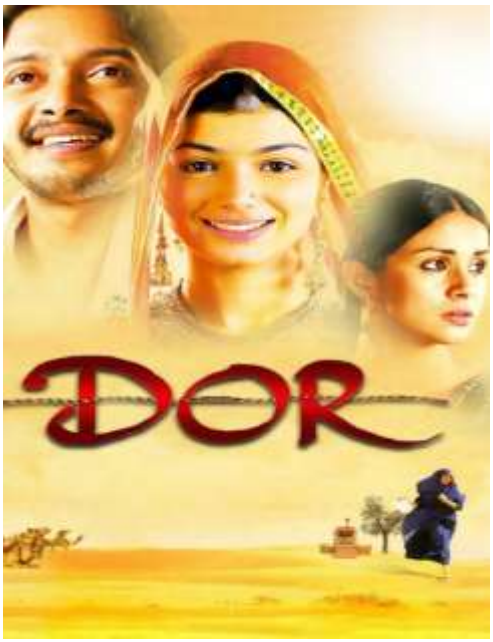

निर्देशक: नागेश कुकुनूर

कलाकार: श्रेयस तलपड़े, गिरीश कर्नाड, नसीरूद्दीन शाह

इस फिल्म के केंद्र में है- इक़बाल, जो कि मूक-बधिर है; इक़बाल का जुनून है क्रिकेट परंतु दूसरे लोगों की तरह उसके पिता को भी लगता है कि क्रिकेट की टीम में शामिल होना उसके लिए असंभव है। लेकिन अपनी लगन व प्रबल इच्छा-शक्ति के चलते इक़बाल अपना लक्ष्य हासिल करता है।

यह फिल्म केवल इक़बाल और क्रिकेट की ही बात नहीं करती बल्कि हमारे समाज के 'गुरु जी' जैसे लोगों के चेहरे से आवरण हटाकर सच्चाई से सामना भी करवाती है जो इक़बाल जैसी साधनहीन प्रतिभाओं के रास्ते में रूकावट पैदा करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते।

फिल्म क्रिकेट के बहाने कई मुद्दों पर बात करती है, फिर चाहे वह दिव्यांगता संबंधी समाज की सोच हो या खेल-संस्थानों में व्याप्त भेदभावपूर्ण व्यवहार की। इसमें एक समर्पित और ईमानदार कोच भी है जो इक़बाल की राह आसान बनाता है। किंतु इन सब पर भारी है इक़बाल जैसे सच्चे खिलाड़ी का जुनून और जुझारूपन, यह फिल्म उसी की है।

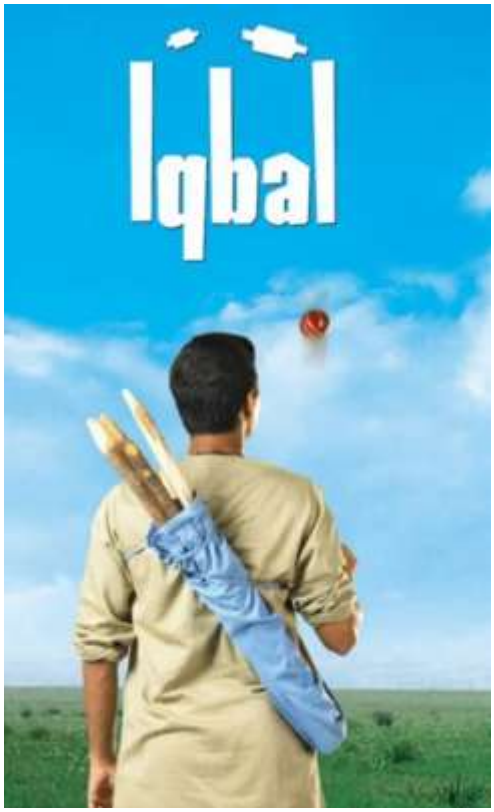

डोर (2006)

निर्देशक: नागेश कुकुनूर

कलाकार: आयशा टाकिया, गुल पनाग, श्रेयस तलपड़े

यह कहानी है दो स्त्रियों की- मीरा, जिसका पति सऊदी अरब में रोज़गार के लिए गया और मारा गया, कम उम्र में विधवा हो चुकी है। दूसरी स्त्री है-ज़ीनत, जिसके पति के कारण अनजाने में मीरा के पति की मृत्यु हो गई है। सऊदी अरब के कानून के अनुसार यदि मीरा, माफीनामे पर हस्ताक्षर कर दे तो ज़ीनत के पति को सजा से मुक्ति मिल सकती है। मीरा और ज़ीनत दोनों अपरिचित होते हुए भी एक डोर से जुड़ी हुई हैं, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ज़ीनत के पति की जीवन-डोर मीरा के हाथों में है। वैधव्य से पीड़ित मीरा के मन की भावनाओं, दमित इच्छाओं को बखूबी दर्शाया गया है।

वेल डन अब्बा (2009)

निर्देशक: श्याम बेनेगल

कलाकार: बोमन ईरानी, रवि किशन, मिनीषा लांबा

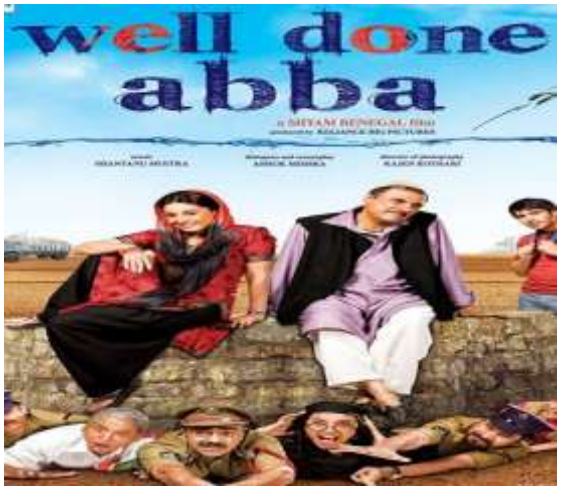

इस फिल्म की शुरूआत होती है जल-संकट की बात से लेकिन पर्त-दर-पर्त रिश्वत, लालफ़ीताशाही जैसे मुद्दे खुलते रहते हैं; जिसमें भ्रष्ट सरकारी इंजीनियर, पुलिस अधिकारी, बैंक कर्मचारी सभी लिप्त हैं।

हाँलाकि गंभीर विषय की कड़वाहट को फिल्मकार ने हास्य-व्यंग्य की चाशनी में लपेटकर प्रस्तुत किया है, फिर भी फिल्म अपना संदेश दर्शकों तक पहुँचाने में पूरी तरह सफल रही है। बावड़ी खुदवाने के रास्ते में आने वाली मुसीबतें भी इस आम आदमी का हौसला तोड़ नहीं पातीं।

बम बम बोले (2010)

निर्देशक: प्रियदर्शन

कलाकार: दर्शील सफारी, ज़ियाह वस्तानी, अतुल कुलकर्णी

यह फिल्म दिखाती है कि गरीबी में जीवन यापन कर रहे बच्चे कैसे समय से पहले बड़े हो जाते हैं। एक जोड़ी जूते अदल-बदलकर पहनते पिनू और रिमझिम के जीवन में जूते बहुत अहम हैं।

देश के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में पाँव पसारता आतंकवाद पृष्ठभूमि में है जिसका असर जन-जीवन पर दिखायी देता है, जिस में खोगीराम जैसे परिश्रमी व ईमानदार लोग गेहूँ के साथ घुन पिसने की स्थिति में हैं। यह फिल्म प्रसिद्ध ईरानी फ़िल्मकार माजिद मजीदी की फिल्म 'चिल्ड्रेन ऑफ हेवेन' से प्रेरित है।

स्टेनली का डब्बा (2011)

निर्देशक: अमोल गुप्ते

कलाकार: पार्थो गुप्ते, अमोल गुप्ते, दिव्या दत्ता

ढाबे में काम करने वाले एक अनाथ छोटे बच्चे स्टेनली, टीचर वर्मा सर, स्नेहिल मिस रोज़ी और बच्चों की चुहलबाजी से सराबोर है इस फिल्म की कहानी।

कई अवसर पर हम दूसरे व्यक्ति की स्थिति को जाने बिना कितने संवेदनाहीन और स्वार्थी हो जाते हैं, इस बात की यह फिल्म धीमे-से सरगोशी कर जाती है।

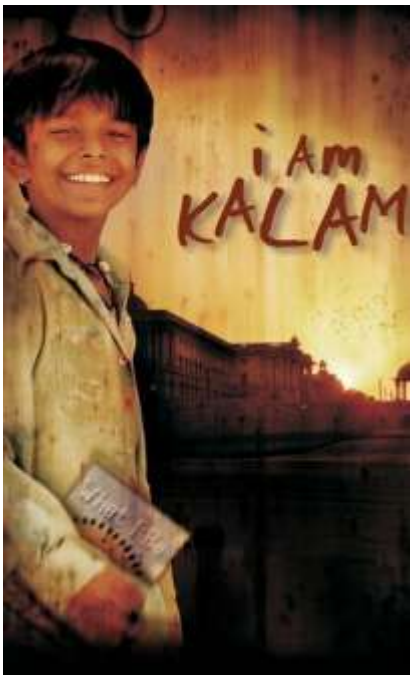

आई एम कलाम (2011)

निर्देशक: नील माधव पंडा

कलाकार: हर्ष मायर, गुलशन ग्रोवर, हुस्सन साद

फिल्म की कहानी एक गरीब राजस्थानी बच्चे छोटू के इर्द-गिर्द घूमती है जो राष्ट्रपति कलाम से प्रेरित होकर अपना नाम कलाम रख लेता है। पढ़ाई के प्रति ललक के रास्ते में आने वाली सारी रूकावटों यहाँ तक कि चोरी के आरोप से भी छोटू का न घबराना उसे आम से ख़ास बना देता है।

अंत में उसके अच्छे स्कूल में जाकर पढ़ने का दृश्य सुख का अहसास देता है परन्तु उससे भी सुखद है छोटू का आत्मविश्वास जो कठिनाइयों में डगमगाता नहीं है।

अंकुर अरोड़ा मर्डर केस (2013)

निर्देशक: सुहैल ततारी

कलाकार: के० के० मेनन, टिस्का चोपड़ा, अर्जुन माथुर

सत्य घटना पर आधारित इस फिल्म में एक छोटे-से बच्चे अंकुर जिसकी, 'अपेंडिक्स' के ऑप्रेशन के दौरान डॉक्टर की लापरवाही की वजह से, मौत हो जाती है; देश के चिकित्सीय सेवाओं पर सवालिया निशान लगाती है जो कि लाज़िमी है। "फिल्म खत्म होने के बाद आप सिनेमा हॉल से तो बाहर आ जाएंगे पर फिल्म की कहानी से बाहर नहीं निकल पाएंगे। 'अंकुर अरोड़ा मर्डर केस' एक 'थॉट प्रोवोकिंग' फिल्म है।" जो देखने वालों के मन-मस्तिष्क को झकझोर देती है। यह फिल्म नंदिता अरोड़ा, डॉक्टर रोमेश और डॉक्टर रिया की भी है जो साहस के साथ अपनी आवाज़ बधिर तंत्र के कानों तक पहुंचाते हैं।

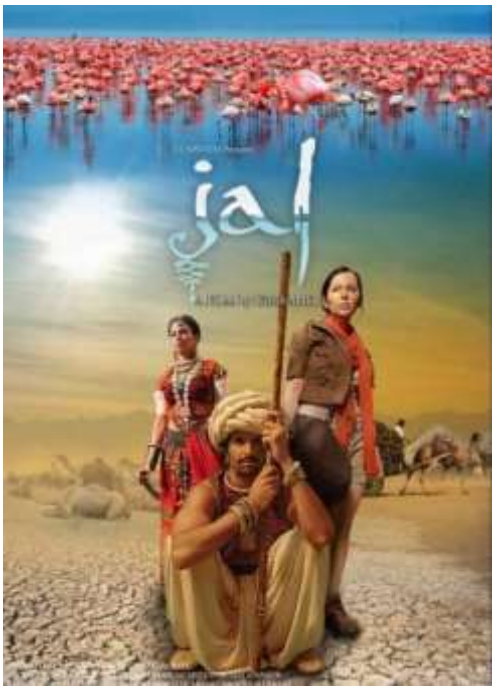

जल (2013)

निर्देशक: गिरीश मलिक

कलाकार: पूरब कोहली, कीर्ति कुल्हारी, यशपाल शर्मा

यहाँ कच्छ के दो गाँवों की कथा है जो भीषण जल-संकट की समस्या से पीड़ित हैं। युवा बक्का धरती के नीचे पानी होने का आंशिक अनुमान लगा लेता है। गाँव में बने तालाब में प्रति वर्ष आने वाले पक्षी राजहंस (फ्लेमिंगो) भी साफ पानी के अभाव में मर रहे हैं। गाँव वालों द्वारा कुआँ खोदने के लिए सरकारी मशीन और डीजल का इंतज़ाम, आपसी कलह जैसे दृश्य, दर्शकों को फिल्म से बांधे रखते हैं।

टेबल नं० 21 (2013)

निर्देशक: आदित्य दत्त

कलाकार: परेश रावल, राजीव खंडेलवाल, टीना देसाई

आकर्षक पुरस्कार-राशि जीतने के लिए नव दंपत्ति विवान व रिया एक गेम शो में हिस्सा लेते हैं, यह खेल पड़ाव दर पड़ाव पर इतना खतरनाक होता जाता है कि उन दोनों को स्वयं को ज़िंदा रखने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता है।

अंत में दर्शकों के सामने वर्षों पूर्व घटी दुर्घटना, कहानी को एक नया अर्थ देती है। फिल्म में अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21, जिसमें जीवन-सुरक्षा और स्वतंत्रता की बात की गयी है, को रहस्यात्मक किन्तु संवेदनशील ढंग से फिल्माया गया है। फिल्म यह भी बताती है कि कई बार कुछ लोगों द्वारा किसी के साथ किया गया उपहासपूर्ण कृत्य, उसके जीवन को संकट में डाल सकता है।

हवा हवाई (2014)

निर्देशक: अमोल गुप्ते

कलाकार: पार्थो गुप्ते, साकिब सलीम, मकरंद देशपांडे

चाय की दुकान पर काम करने वाले छोटे लड़के अर्जुन का सपना है स्केटिंग करना और सपने देखने का हक़ तो सबको है। कोच अनिकेत, अर्जुन को स्केटिंग सिखाता है; अर्जुन को प्रतियोगिता में भाग लेकर साबित करनी है अपनी काबिलियत। लेकिन कोमल सपनों को हक़ीक़त की ज़मीन पर उतारना इतना भी आसान नहीं।

फिल्म हमारे आगे आईना रखती है कि सपने केवल देखना काफी नहीं; उन्हें पूरा करने के लिए लगन, धैर्य और जी-तोड़ कोशिश भी चाहिए क्योंकि हर अर्जुन को अनिकेत और सच्चे दोस्त नहीं मिलते।

निल बटे सन्नाटा (2016)

निर्देशक: अश्विनी अय्यर तिवारी

कलाकार: स्वरा भास्कर, रिया शुक्ला, पंकज त्रिपाठी

चंदा सहाय लोगों के घरों में बाई का काम करती है, अल्प शिक्षित चंदा कड़ी मेहनत करती है ताकि उसकी बेटी अपेक्षा अच्छी तरह पढ़ सके। अपेक्षा का मानना है कि बाई की बेटी होने के कारण वह भी बाई ही बन पाएगी इसलिए उसके मन में पढ़ाई के प्रति रुचि कम होने लगती है। गणित को लेकर भी अपेक्षा के मन में डर है, जिसे दूर करने के लिए चंदा स्वयं उसकी कक्षा में प्रवेश लेकर, पढ़ाई के प्रति फिर से उसके मन में रुचि जगाने में सफल होती है। माँ-बेटी के संबंधों को सुंदरता से दर्शाती फिल्म, उस छद्म समाज के मुँह पर जोरदार तमाचा भी है जो सर्व-शिक्षा की बात करते हुए वर्ग व आयु विशेष के लोगों को उस रेखा से बाहर रखकर देखता है।

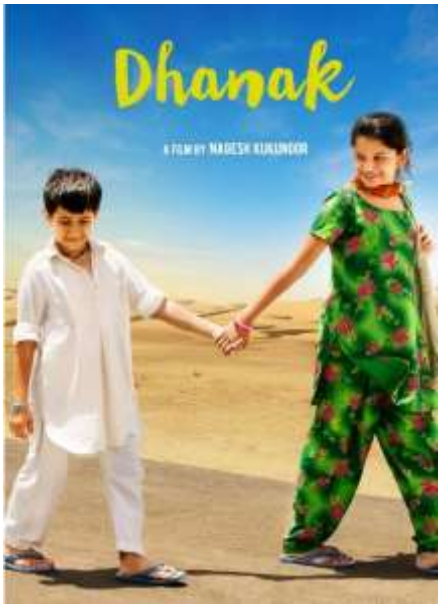

धनक (2016)

निर्देशक: नागेश कुकुनूर

कलाकार: कृष छाबड़िया, हेतल गाड़ा, विपिन शर्मा इस फिल्म में मुख्य पात्र दो बच्चे छोटू और परी हैं। पर्याप्त पोषण न मिलने के कारण अंधता से पीड़ित अपने भाई का उपचार करवाने के लिए परी और छोटू घर से निकल पड़ते हैं। उनकी यात्रा वास्तव में जीवन की यात्रा है, जिसमें कभी उनका सामना भेड़ की खाल ओढ़े भेड़ियों से होता है तो कभी समाज की दृष्टि में बुरे, विक्षिप्त परन्तु सहृदय लोगों से।

सुखद अंत के साथ फिल्म अनकहा संदेश भी दे जाती है कि धनक यानि इंद्रधनुष देखना है तो सीमाओं को लाँघना और वर्जनाओं को तोड़ना होगा।

न्यूटन (2017)

निर्देशक: अमित मसुरकर

कलाकार: राजकुमार राव, अंजलि पाटिल, रघुबीर यादव

विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत की चुनाव प्रक्रिया बहुत व्यवस्थित है तो इसकी एक वजह नूतन कुमार उर्फ़ 'न्यूटन' जैसे कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ और अधिकारी हैं। न्यूटन की नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्र में पीठासीन अधिकारी की चुनाव ड्यूटी लगती है। लेकिन न्यूटन व एक स्थानीय स्कूल टीचर मालको के अलावा अन्य मतदान अधिकारी और सुरक्षा बल के सदस्य अपनी ड्यूटी के प्रति गम्भीर प्रतीत नहीं होते।

विषम परिस्थिति में भी अपनी ड्यूटी के प्रति उनकी ईमानदारी आशायुक्त संदेश देती है कि जब तक ऐसे समर्पित योद्धा हैं देश का लोकतंत्र सुरक्षित है।

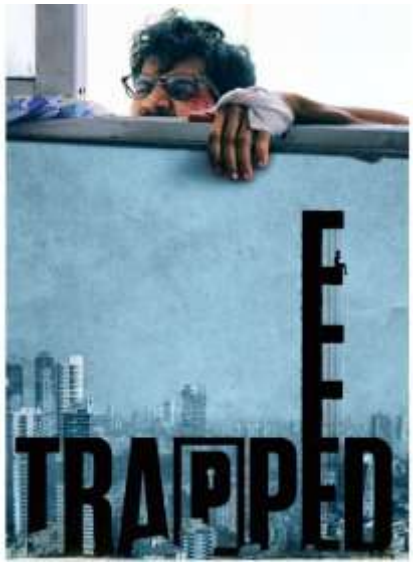

ट्रैप्ड (2017)

निर्देशक: विक्रमादित्य मोटवानी

कलाकार: राजकुमार राव, गीतांजलि, आर० एन० शुक्ला

एक महानगर की निर्माणाधीन खाली इमारत के फ्लैट में दरवाज़े के लॉक की खराबी के कारण शौर्य अंदर बंद हो जाता है। बाहरी दुनिया से कोई संपर्क नहीं, खाने-पीने का सामान ख़त्म होने पर शौर्य की खुद को ज़िंदा रखने की जद्दोजेहद रोंगटे खड़े कर देती है।

किन्तु इससे भी अधिक तकलीफ़देह बात है- शौर्य की गैर हाज़िरी पर किसी का ध्यान न जाना। यह अजनबीपन चरित्र है महानगरों का। हमें सोचना होगा कि अपनी एकांततता की हम कितनी क़ीमत चुकाने को तैयार हैं और क्यों?

पिहु (2018)

निर्देशक: विनोद कपरी

कलाकार: मायरा विश्वकर्मा, प्रेरणा विश्वकर्मा, राहुल बग्गा

इस फिल्म की कथा भी वास्तविक घटना से प्रेरित है। महानगर के एक बंद फ्लैट में माता-पिता की आपसी अनबन के बाद पिता के चले जाने और माँ द्वारा आत्महत्या कर लेने से बेख़बर दो वर्ष की मासूम पिहु फ्लैट में नितांत अकेली है। ऐसे में पिहु के आस-पास कई घटनाएँ लगातार घटित होती हैं जिन्हें देखकर कलेजा मुँह को आ जाता है। बड़ों के मन-भेद की क़ीमत अदा करते निर्दोष बचपन की कहानी है 'पिहु'।

आबादी के बोझ तले हाँफते महानगरों में भाग-दौड़ के बीच अकेलेपन की त्रासदी भोगते 'भद्र' लोग, जो न तो किसी की ज़िंदगी में 'दखल' देते हैं और न ही अपने 'स्पेस' में किसी को आने की इजाज़त, यह कटु सत्य है हमारे तथाकथित विकसित समाज का।

विगत दो दशकों में ऐसी कई फिल्में बनीं जिनमें भारतीय समाज बिंबित हुआ है। व्यवसायिक सिनेमा के समान न तो इनका कथ्य कृत्रिम होता है और न ही अकल्पनीय क्षमताओं से सम्पन्न अविश्वसनीय चरित्र। वास्तविकता से जुड़े होने की वजह से यह सिनेमा आम व्यक्ति के ज़्यादा क़रीब है। समानांतर सिनेमा की ये फिल्में मनोरंजन तो करती हैं परंतु मात्र विशुद्ध मनोरंजन नहीं। इनसे जुड़े लोगों ने समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूरी ईमानदारी से निर्वहन किया है। भविष्य में आने वाले संकटों को लेकर चैतन्य करना या फिर समस्याओं, रूकावटों, बिगड़ती परिस्थितियों के मध्य अंकुराती आशा को प्रस्तुत करना, इनकी विशेषता है। अदम्य मानव-जिजीविषा को समर्पित इन फिल्मों का आनन्द तभी लिया जा सकता है जब हमारे मन व मस्तिष्क दोनों ही सजग हों।

मशीनीकरण, तकनीक और वैश्वीकरण से हम और बौद्धिक हुए, आभासी रूप में अपनों के अधिक निकट भी हो गए लेकिन हमारी भावनाएं, संवेदनाएं कहीं पीछे रह गयीं। ऐसे में इस प्रकार की फिल्में हमारे हृदय की कोमलता का बखूबी पोषण करती हैं, यानि मानव को अधिक मानवीय बनाने में सहायक हैं। पथरीली ज़मीन पर कोमल दूर्वा का अहसास कराता समानांतर सिनेमा अपने काम को प्रशंसा योग्य ढंग से अंजाम दे रहा है, इसकी बढ़ती लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है। समानांतर हिन्दी सिनेमा, बिना प्रसिद्ध नायक-नायिकाओं की उपस्थिति, कम बजट होने के बावजूद बेहतरीन 'कंटेंट' के कारण दर्शकों के बीच अपनी सम्मानजनक जगह बना चुका है।

यद्यपि दर्शकों की बदलती रुचि के कारण व्यवसायिक सिनेमा में भी सामाजिक सरोकारों से जुड़े विषयों पर फिल्में बनने लगी हैं लेकिन उनके निर्माता बॉक्स ऑफिस पर अधिक धन कमाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। इसलिए कई बार इतने फिल्मी मसालों का इस्तेमाल कर देते हैं कि फिल्म का वास्तविक संदेश दब जाता है या फिर दम तोड़ देता है।

समाज को सही दिशा और मनोरंजन दे रहे इस सिनेमा को आर्थिक प्रोत्साहन की संजीवनी की भी आवश्यकता है। ऐसे में यदि इन फिल्मों के लिए सरकारों द्वारा मनोरंजन कर की दरों में यथासंभव छूट दी जाए तो और अधिक संख्या में ऐसी फिल्में बन सकेंगी।

संदर्भ:-

1. भारतीय समाज की समझ- मणींद्र नाथ ठाकुर

https://www.prabhatkhabar.com/opinion/1043378

2. समानांतर सिनेमा

https://hi.m.wikipedia.org/wiki/समानान्तर_सिनेमा

3. ज़िन्दगी में भी डाला असर- खुशनुमा परवीन, पृष्ठ 30

मीडिया विमर्श-सिनेमा विशेषांक 2 मार्च, 2013 भोपाल (मध्य प्रदेश)

4. https://hindi.webdunia.com/bollywood-gossip/bigg-boss-13-dolly-bindra-on-rashami-desai-says-she-is-not-given-10-percent-to-show-120021200060_1.html

5. https://ndtv.in/filmy/review-of-ankur-arora-murder-case-364887

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. Thiswork is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.